P: ISSN NO.: 2321-290X RNI : UPBIL/2013/55327 Shrinkhla Ek Shodhparak Vaicharik Patrika
E: ISSN NO.: 2349-980X Vol-III* Issue-VIII* April-2016

काशीनाथ सिंह के कथा–साहित्य में दलित चेतना

राकेश प्रसाद
शोधार्थी,
हिन्दी विभाग,
विश्व भारती,शान्ति निकेतन,
भाषा भवन, असनसोल,
पश्चिम बंगाल

सारांश

काशीनाथ सिंह हिन्दी के समर्थ जनवादी कथाकार हैं। वे स्वतंत्रता के पूर्व एवं पश्चात की परिस्थितियों के यथार्थ दर्शक रहे हैं। उन्होंने यह अनुभव किया कि स्वतंत्रता के इतने वर्षों के बाद भी दलितों की स्थिति दयनीय बनी हुई। आज का दलित समाज सदयिों की गुलामी से मुक्ति पाने के लिए संघर्षरत है। उसका संघर्ष समाज में समानता, स्वतंत्रता, बंधुत्व और न्याय पाने के लिए हैं। कथाकार ने अपने कथा साहित्य में दलितों की सामाजिक और राजनीतिक परिस्थितियों का चित्रण बड़ी गहराई से करते हुए उनके यातना पूर्ण जीवन का चित्र प्रस्तुत किया है। उनकी कहानियॉ 'कहानी सराय मोहन की', 'चोट' और 'वे तीन घर' तथा उपन्यास 'रेहन पर रग्घू' दलित चेतना की जलती हुई मसाल हैं जिनके आलोक मे दलितों को एक नयी राह मिल सकती है।

मुख्य शब्द : दलित चेतना, समानता, स्वतंत्रता, बंधुत्व न्या।

प्रस्तावना

काशीनाथ सिह में जीवन और समाज में विकसित होते हुए लक्षणों को पहचानने और उन्हें रेखांकित करने की अद्भुत क्षमता है। कथाकार ने यह अनुभव किया कि स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् दलितों में भी सदियों की गुलामी से मुक्ति पाने की आकांक्षा प्रबल होने लगी है। वे भी अपने अधिकरों के प्रति सचेत होने लगे हैं। वे भी स्वतंत्रता, समानता और न्याय के लिए संघर्ष करने लगे हैं। अतः कथाकार ने भी अपने कथा–साहित्य में दलित मुक्ति आन्दोलन को विम्बित किया है। उनके कथा–साहित्य में दलित चेतना पर विचार करने से पूर्व 'दलित' कौन हैं? दलित चेतना क्या है? और दलित साहित्य किसे कहते हैं? इन प्रश्नों पर विचार कर लेना उचित है। ''दलित उस वर्ग विशेष को सूचित करता है जिसे सामाजिक एवं ऐतिहासिक कारणों से अस्पृश्य और शाषण की अमानवीय व्यथा झेलनी पड़ी है और अस्पृश्यता के नाम पर सामाजिक, आर्थिक, एवं शैक्षणिक संस्थाओं से दूर रखा गया है। भारतीय संविधान ने उन्हें सामाजिक एवं ऐतिहासिक कारणों से दबाया गया वर्ग मानकर आरक्षण प्रदान किया है।''[1]

भारतीय समाज के चतुर्वर्णों में दलित सबसे नीचे रहे। वे अछूत हैं, अस्पृश्य हैं, नींच हैं, चण्डाल है। उच्चवर्ग इन्हें अपने गुलाम के रूप में मानते थं सभी प्रकार के अत्याचारों, अनीतियों एवं शोषणों को सहते हुए जीने के लिए अभिशिप्त थे। दलितों में अपने अधिकारों और सामाजिक स्थिति के प्रति आयी जागरूकता ही दलित चेतना है। दलित साहित्य के संदर्भ में दलित चिंतक कवल भारती लिखते हैं,–''दलित साहित्य से अभिप्राय उस साहित्य से है जिसमें दलितों ने स्वयं अपनी पीड़ा को रूपायित किया ह, अपने जीवन संघर्ष में दलिता ने जिस यथार्थ को भोगा है, दलित साहित्य उनकी अभिव्यक्ति का साहित्य है। यह कला के लिए कला नहीं बल्कि जीवन का और जीवन की जिजीविषा का साहित्य है। इसलिए कहना न होगा क वास्तव में दलितों द्वारा लिखा गया साहित्य ही दलित साहित्य की कोटि में आता है।''[2]

उद्देश्य

इस आलेख का उद्देश्य समतामूलक समाज व्यवस्था के निर्माण की परिकल्पना है तथा समाज में समानता, बंधुत्व,भाई– चारा की सद्भावना के विकास के साथ ही दलितो को आत्मबल प्रदान करते हुये उनके हृदय से हीन भावना को निर्मूल करना है।

श्री बाबूराव बागुल के शब्दों में ''मनुष्य की मुक्ति को स्वीकार करनेवाला मनुष्य को महान माननेवाला, वंश, वर्ण और जाति का प्रबल विरोध करने वाला साहित्य ही दलित साहित्य है।''[3]

दलित साहित्य आज के युग का साहित्य है इस संदर्भ में डा0 विमल कीर्ति ने कहा, ''दलित साहित्य जाति भेद तथा धर्म भेद पर आधारित उत्पीड़न के खिलाफ तो है ही किन्तु वह आर्थिक शोषण तथा गैर बराबरी के लिखाफ भी हैं। इसलिए फुले–अम्बेडकरवादी साहित्य को आज के युग का साहित्य कहा जाता है।''[4] अतः वास्तव में दलित साहित्य बहिष्कृत समाज की वेदना का साहित्य है।

वैदिक काल में जाति व्यवस्था नहीं थी। वर्ग व्यवस्था थी, काम के आधार पर वर्ग निश्चित हो जाता था। अपनी योग्यता और कार्य कुशलता में वृद्धि करने और काम बदलने पर वर्ग परिवर्तित भी हो सकता था। बाद मे वर्ग वर्ण में बदल गये। उत्तरवैदिक काल में वर्ण व्यवस्था के नियम सख्त हुए। एक वर्ण से दूसरे वर्ण में प्रवेश के द्वार बंद हुए। स्वार्थी लोगों ने सत्ताधारियों के साथ मिलकर अपने को हमेशा के लिए श्रेष्ठ घोषित कर लिया। फिर धीरे–धीरे एक ही वर्ण में अनेक जातिया बन गई। उच्च वर्ण के लागों ने निम्न वर्ण वालों के लिए धर्म ग्रंथों के माध्यम से शास्त्रीय नियम गढ़ लिए और निम्न वर्ण वालों का धर्म उच्च वर्ण वालों की संवा निर्धारित किया गया। मनुस्मृति में एक ही अपराध के लिए उच्च वर्ण वालों के लिए अलग ओर निम्न वर्ण वालों के लिए अलग दंड की व्यवस्था निश्चित की गई। निम्नवर्ण वालों को अछूत घोषित कर गांवों से दूर अलग हट कर रहने की आज्ञा दे दी गई। सामाजिक जीवन की कठिन परिश्रम वाले कार्य इसी वर्ण से कराये जाते थे। इन्हें वेद–पुराण, उपनिषद, इतिहास से दूर रखा गया। इन्हें पर्णतः शिक्षा से वंचित रखा गया। इन्हें समझाया गया कि वेद पुराणों को सुनना और पूजा पाठ करने का इन्हें अधिकार नहीं है। धीरे–धीरे इनके लिए अलग ईश्वर उत्पन्न हुए जो सवर्णों से बिल्कुल भिन्न थे। यदि कोई शूद्र शिक्षा प्राप्त करने का प्रयत्न करता था तो उन्ह कठोर दंड दिया जाता था। इस प्रकार दलितों का सामाजिक जीवन अत्यन्त दयनीय एवं अमानवीय बन गया। उन्हें बताया गया कि ईश्वर ने उन्हें ऐसे ही जीवन बिताने के लिए सृजित किया है। रमणिका गुप्ता जी उच्च वर्णों की इस असामाजिक वृत्ति पर प्रकाश डालते हुए लिखती है,'' एक समूह को अमीर, अभिजन, सवर्ण उच्च और श्रेष्ठ घोषित किया और दूसरे विशाल समूह को गरीब, हेय, घृणित, अस्पृश्य एवं निकृष्ट बनाया। एक बड़ी जमात को भौतिक सुख से वंचित रखने में संतुष्ट रहना और बिना फल के कर्म करना सिखाया और दूसरी जमात को श्रम से विमुख रखना भी श्रम से घृणा करना। इसलिए एक और मापक भी गढ़ दिया गया कि जा श्रम करे वह छोटी जाति का श्रम न करके श्रम करनावालों की कमाई खाये वह बड़ी जाति का। ब्राह्मण पढ़ेगा, पढ़ायेगा पर शारीरिक श्रम नहीं करेगा।यानी उत्पादन नहीं करेगा। हल छुपेगा तो जाति से बाहर जायगा। वैश्य व्यापार करेगा, लड़ने वालों, पढ़ाने वालों को आर्थिक सहायता देगा उत्पादन करन वालों से माल खरीदेगा, खुद पढ़ेगा भी लेकिन दैहिक श्रम नहीं करेगा।''[5]

इस प्रकार सामाजिक दृष्टि से दलितों की स्थिति बिल्कुल प्रतिकूल थी। सदियों से अज्ञानता के कारण वे सारे अत्याचारों एवं अन्यायों को सहते रहे। उनके पास न मिट्टी है, न धन है, और न मकान। वे लगभग निरर्थक जीवन बिता रहे थे। स्वतंत्रता के पश्चात् भारत में दलितों की आर्थिक स्थिति को सुधारने की योजना बनायी गई पर उचित कार्यवाही के अभाव में उन योजनाओं से वांछित फल नहीं मिल पा रहा है। इन्हें आज भी अस्पृश्यता, छुआछूत, जुल्म अन्याय और अत्याचार, हत्या, अपमान, बलात्कार दूसरों से अधिक झेलना पड़ा है। इन सारे परिदृश्यों को 'रेहन पर रग्घू' उपन्यास में काशीनाथ सिंह ने दर्शाया है। पहाड़पुर गॉव में एक तरफ ठाकुरों की बस्ती है तो दूसरी तरफ चमरटोला है और एक तरफ अहीरों की बस्ती है। चमरटोला के लाग ठाकुरों के यहॉ हलवाही वही बाबा आदम के जमाने की मजबूरी पर करते हैं। अतः चमारों ने निवेदन किया कि इतने कम मजदूरी में अब नहीं चलता। परन्तु ठाकुरों ने उनके निवेदन को ठुकरा दिया। फलस्वरूप चमारों ने हलवाही करने से इनकार कर दिया और यह इनकार हड़ताल में तब्दील हो गया। ठाकुरों ने सोचा चमार जब खाने बिना मरेंगे तो पूँछ हिलाते हुए आयेंगे। पर ऐसा नहीं हुआ। ठाकुरों का टोला गोबर, पानी और गन्दगी से बजबजा उठा। खेत उदास दिखे। ठाकुरो ने रघुनाथ से पूछा कि समाधान का कोई उपाय बताएँ। रघुनाथ ने कहा, ''उपाय है या तो उसकी मॉगों पर सहानुभूति के साथ विचार करें या फिर ट्रेक्टर खरीदें। ....''चलाएगा कौन? ड्राइवर के साथ हेल्पर चाहिए, खलासी चाहिए।'' रघुनाथ ने कहा कि, ''अपने ये लड़के जा पिछले सात–आठ साल से कम्पटीशन के नाम पर मटरगश्ती कर रहे हैं जब नौकरी का ठिकाना नहीं तो यही करें।''इतना कहना था कि लडकों के चेहरे तमतमा उठे। लेकिन सामने बुजुर्ग थे। वे कसमसा उठे।''[6]

यहॉ कथाकार ने दलितों की आर्थिक स्थिति और सदियों से चले आ रहे आर्थिक शोषण की ओर संकेत किया है उनकी बस्ती ठाकुरों और अहीरों की बस्ती से दूर एक तरफ है जो अस्पृश्यता की ओर इशारा करता है। इक्कीसवीं सदी में भी बाबा आदम के जमाने की मजदूरी पर ठाकुर चमारों से हलवाही कराना चाहते हैं। केवल हलवाही ही नहीं बल्कि पूरे गॉव की सफाई, जानवरों के मल–मूत्र से लेकर सब कुछ यानी स्वच्छता का पूरा ठेका उन्हीं चमारों पर था। जब उन्होंने हड़ताल कर दिया तो पूरा गॉव गंदगी से बज–बजा उठा। ये बड़े लोग कहलाते किसान थे पर कभी हल न चलाते थे, यहॉ तक कि ट्रेक्टर भी नहीं। इनके सारे खेतों में शारीरिक श्रम करने वाले दलित समाज के ही लोग थे। स्थिति यह थी कि गोधन की सेवा, गोबर साफ करना दलित करें और ये गाय की सेवा नहीं करेंगे पर दूध पूरा का पूरा ये ही पी जायेंगे। हल नहीं चलायेंगे, सोहनी ,कटनी, सिंचाई, सब दलित करेंगे पर अनाज के मालिक ठाकुर होंगे और मजदूरी वही बाबा आदम के जमाने की देंगे। इस प्रकार 'रेहन पर रग्घू' उपन्यास में काशीनाथ सिंह ने दलितों की सामाजिक स्थिति और आर्थिक शोषण का यथार्थ चित्रण किया है।

दलितों का मात्र आर्थिक शोषण ही नहीं होता वरन् यौन शोषण भी होता है। इसे भी उपन्यास में चित्रित किया गया है। बजरंगी सिंह ऊर्फ छब्बू गाव के दबंग ठाकुर थे और एक खूबसूरत चमारिन को उसके घर जाकर उसके पति'झूरी के सामने रंग रेलियॉ मनाया करते थे। कई बार चमारों ने मिनौती की और अपनी तथा उनकी प्रतिष्ठा की याद दिलाई। पर वे किसी की नहीं सुनते थे। एक दिन उसके पति 'झूरी' ने उन्हें समझाया तो उन्होंने उसकी ऐसी पिटाई कर दी कि महीनों उसके शरीर पर हल्दी और प्याज छापने की नौबत आ गई। हड़ताल के दौरान ठाकुरों ने भी उन्हें मना किया कि अब वे वहॉ न जाएँ स्थिति तनावपूर्ण है फिर भी वे न माने

और एक दिन चमारों ने उसकी ऐयासी से तंग आकर एक साथ उन पर हमला कर दिया और उनकी हत्या कर दी। कथाकार काशीनाथ सिंह ने दलितों द्वारा हड़ताल और अन्यायी छब्बू सिंह को मार डालने की घटना को दलितों के लिए एक मुक्ति आन्दोलन के रूप में प्रस्तुत किया है। कथाकार ने इस उपन्यास में उच्च जाति के वर्चस्व को तोड़ा है। इस घटना के बाद ठाकुर भयभीत हुए और उन्होंने चमरटोली की ओर रूख नहीं किया।

ठाकुरों में लड़की की शादी करना कोई खेल नहीं है। 'रेहन पर रग्घू उपन्यास के नायक रघुनाथ अपनी पुत्री सरला के विवाह के लिए दर–दर भटक रहे है। लड़कों के पिता की मॉग को पूरा करने में असमर्थ हैं। जब रघुनाथ की पुत्री सरला बिना दहेज दिये चमार जाति के लड़के सुदेश भारती से विवाह का प्रस्ताव अपने माता–पिता के समक्ष रखती है तो उसे घर से निकाल दिया जाता है, जबकि सुदेश भारती एस0डी0एम0 है। सरला अध्यापिका है। वह स्वावलम्बी है इसलिए एकाकी जीवप बिताती है।

उपन्यास में रघुनाथ आरक्षण का विरोध और पढ़े–लिखें दलितों का अपमान करते देखे जाते हैं, ''आरक्षण और कोटा के सिवा भी इसका काई मतलब है? यही न कि न होता आरक्षण तो यही भारती किसी न किसी का हल जोत रहा होता या पढ़ने–लिखने के बावजूद नगर में रिक्शा खींच रहा होता! तुम्हीं कहती थी कि एकदम गधा है, कुछ नहीं समझता। आज पी0सी0एस0 हो गया तो उस जैसा कोई नहीं?''[7]

उपन्यासकार के अनुसार रघुनाथ बुरे नहीं थे। वे सदैव हरिजन लड़कों की सहायता के लिए तैयार रहते थे, कॉपी, कलम, पुस्तक, गरीब बच्चों के लिए फीस माफी के लिए तैयार रहते थे। वे चाहते थे कि वे पढ़ें, आगे बढ़ें। परन्तु उनका रिश्ता उनके घर हो जाय। उनके हलवाहे, गोबर काढ़ने वाले, उनके समधी कहलाकर उनसे गले मिलने लगे जो कल तक उनके सामने जमीन पर बैठते थे अब वे पलंग पर साथ बैठने लगे वे कदापि नहीं चाहते थे। यह सोचते ही उनका हृदय जुगुप्सा से भर जाता था।

इस पूरे प्रसंग से यह पता चलता है कि जब बराबरी की बात आती है तो दलितों को हेय की दृष्टि से देखा जाता है। वे उनकी बराबरी कैसे करें? उनकी जगह तो उनके सामने जमीन पर खड़े रहने की है। यह बात तब हो रही है जब किसी नीची जाति का लड़का ऊँची जाति की लड़की से सम्बन्ध रखता है, वह भी लड़की की मरजी से। वहीं ठाकुर खुले आम एक दलित स्त्री ढ़ोला से सम्बन्ध रखता है वह भी उस स्त्री क मरजी के बिना। वह झूरी की पत्नी है ओर झूरी उसके यहॉ काम करता है। परन्तु कोई कुछ नहीं कहता। सभी उससे डरते हैं। उस छब्बू पहलवान को भी पता है कि कितने ही ठाकुरों के दलित स्त्रियों के साथ सम्बन्ध हैं। उस व्यक्ति का फहड़ कथ्य भी विचारणीय है–''मास्टर साहब! छोड़ दूँ लेकिन जाऊँ कहॉ गॉव में तो सभी बेटियॉ है बहुए हैं और कहॉ जाऊँ ?''[8] अर्थात् पहाड़पुर गाव म ही चमरटोल है चमारों की बेटी बहुए, लगता है उस गाँव की बेटी, बहू नहीं है। समाज में यह अलगाव, ऐसी विषमता सोचनी है। ये बातें कथाकार के हृदय की संवेदना को झंकरित करती है। ऐसी समस्याएँ न्याय की मॉग करती हैं।

अपनी कहानी 'कहानी सराय मोहन की में कथाकार ने ऊँची जाति के लोगों के छल–प्रपंच की ओर संकेत करते हुए दलितों की सामाजिक अवस्था का चित्रण किया है। कथाकार धनुर्धारी सिंह और पंडित जी के वार्तालाप के माध्यम से दलित विमर्श पर चर्चा करता है। पंडित जी ने कहा,''चमारों के शहर भागने से अब आटे–दाल का भाव बाबू लोगों को मालूम होगा, तो बाबू साहब भी ताव खा गए, इन बातों का हमें भी कुछ गम नहीं है महाराज! हम इतने गए गुजरे नहीं हो गए हैं। हमने ट्रेक्टर खरीदे हैं। थ्रेसर लिए हैं, पम्पिंग सेट बिठाए हैं, अब हमें खुद उनकी जरूरत नहीं। जहॉ मर्जी वहॉ जाओ, लेकिन वहॉ से लौटकर आओगे तब बात करेंगे।''[9]

बाबू साहब के कथन में आक्रोश साफ झलकता ह। कहने का तात्पर्य है कि ये दलित बाहर न जाएँ, उनके शोषण की चक्की में पीसते रहें तो इनके लिए बहुत ही आच्छा है। उनकी मानसिकता इस वर्ग को सदा के लिए गुलाम बनाये रखने की है।

बाबू साहब कहते हैं, तो लगता है कि हलवाहे लोहार, कहार, चमार सबके सब या तो पगला गए हैं या चालाक हो गए हैं, वे अपने चाहे जो कुछ करें, लेकिन नहीं चाहते कि उनके लड़के भी वहीं करें जो वे कर रहे हैं। है कि नहीं? यहॉ तक कि शादी–व्याह के मौके पर कर्ज लेना होता है तो हमारे पास नहीं, अहीरों, कुर्मियों के पास जा रहे हैं। इसलिए कि उनको हैसियत नहीं कि उन्हें गुलाम बना सके पंडित जी ने गर्दन हिलाई।''[10]

कथन से यह साफ झलकता है क बाबू साहब जो गॉव के जमीदार थे वे चाहते हैं कि सभी नीची जातियॉ उनके गुलाम बन कर रहें।। देश भले ही सन् 47 में आजाद हो गया हो पर नीची जातियॉ उनकी गुलामी करती रहे और तरक्की न करे। वरना उनकी हलवाही कौन कहेगा, उनके मवेशियों का गोबर कौन साफ करेगा?

रात काफी हो चुकी थी। दोनों भूखे थे। उसी क्रम में उन्हें अन्न पकाने की गंध मिली। दोनों सूँघते हुए वहॉ पहुँचे वहॉ एक मोहनराम नाम का चमार कुछ बाटियॉ सेंक रहा था। दोनों के मह से लार टपक रहा था पर जाति आड़े आ रही थी। मोहन पास ही बन रही पुलिया में मजदूर था। ओवर टाइम कर थका हुआ आधी रात को खाने का इंताजाम कर रहा था। दोनों ने भूख लगने की बात की। मोहन ने अपनी जाति बताई थोड़ी दर बहस चली फिर समझौता हो गया। ठाकुर और पंडित जी ने मिलकर सारी बाटियॉ उड़ा दी। उस गरीब के लिए कुछ भी न छोड़ा। वह चने और मटर चबाता रात बिताता रहा। कथाकार यह स्पष्ट कर देना चाहता हैं कि समाज का एक वर्ग दिन के उजाले में उन्हें अस्पृश्य मानते हुए उनसे घृण करता हुआ दूर–दूर करता है परन्तु रात के अंधेरे में उसकी सारी बाटियॉ उड़ा देने में तनिक संकोच नहीं करता । यह भी नहीं सोचता कि दनि राम परिश्रम करके आये हुए इस थके दलित मजदूर के लिए भी तो कुछ छोड़ दें। यह कथा शोषण के इतिहास को दुहराता है और साथ ही समाज के बदलते हुए परिवेश को भी दर्शाता है। इस कहानी की विशेषता इसलिए भी कि यह कहानी उस समय लिखी गई जिस समय साहित्य में दलित विमर्श की चर्चा दूर–दूर तक नहीं थी। मोहन राम की कथा कह कर

कथाकार दलितों की सामाजिक स्थिति का चित्रण करता है।

'चोट' कहानी में कथाकार स्पष्ट करा है कि सवर्णों की स्थिति पहले जैसी नहीं रह गई है। उनकी स्थिति चरमराने लगी है और कुछ लोग हाशियो पर आने लगे हैं।,परन्तु हाशिये पर खड़ा ठाकुर वेयरा काम करते हुए अब भी अपने को राजा कहलाने का अहं छोड़ नहीं पाया है। ईमानदारी के साथ उसे अपना काम करने में लज्जा आती है। वह अपनी अहं की रक्षा के लिए अपने दलित सहपाठी से अपना परिचय छिपाता तो है ही, वह अपने सहपाठी मित्र का अपमान भी करता है। जब उसका मित्र उसकी औकात दिखा देता है तो वह आपे से बाहर हो जाता है ओर मार–पीट कर बैठता है इतना ही नहीं अपने मालिक को भी पीट देता है और नौकरी त्याग कर चल देता है। कथाकार लिखता है ''सैकड़ों हजारों सालों से यह वर्ण व्यवस्था हैं, जातियॉ हैं–टूटते–टूटते टूटेगा।''[11]

कथाकार अपनी कहानी 'वे तीन घर' की चर्चा करता हुआ कहता है–''वे तीन घर में विपत राम कमरेट है और दलित हैं। वे दलितों का नापसंद करते हैं और सवर्णों के बीच उठते–बैठते हैं। वे आज की भाषा में नव ब्राम्हण हो चुके हैं। वे नई कॉलोनी में इसलिए आ गये हैं कि उनकी बीबी को ओर उनको घसियारी टोला की गंदगी और बच्चों से घिन्न आती है। वे उनक तीनों घरों को हिकारत से दखते हैं जो दलितों के हैं।''[12]

विपद राम दलितों का काम तो करते है परन्तु रिश्वत लेते हुए भी नहीं हिचकते। उनके लड़के अंग्रेजी माध्यम विद्यालयों में पढ़ते हैं।

निष्कष

निष्कषतः कथाकार काशीनाथ सिंह ने दलितों की विभिन्न समस्याओं पर प्रकाश डाला है। दलित किस परिवेश ओर परिस्थितियों में जी रहे हैं। उनका शोषण किस प्रकार हो रहा है। इस तमाम प्रश्नों पर उन्होंने गहराई में विचार किया है। उन्होंने सवर्णों के शोषण चक्र को तोड़ते हुए दलितों द्वारा चलाये जा रहे मुक्ति के लिए प्रयासों का उल्लेख किया है। उन्होंने अपने कथा–साहित्य में दलित विमर्श को सायास लाने का प्रयास नहीं किया है। प्रत्युत ये अनायास ही उनके कथा में गुम्फित होते चले गये हैं।

सन्दर्भ–सूचो

1. एन मोहन– समकालोन हिन्दी उपन्यास, वाणी प्रकाशन– 2013, पृ0 सं0,–145–146
2. बाल्मीकि आम प्रकाश–दलित साहित्य का सौन्दय शास्त्र, राधाकृष्ण प्रकाशन–2001 पृ0 सं0–14
3. वही पृ0सं0 16
4. डॉ0 तिवारी मुन्ना– दलित चेतना और समकालीन हिन्दी उपन्यास, पृ0 सं0–361
5. डॉ0 गुप्ता रमणिका, दलित चेतना, साहित्यिक एवं सामाजिक सारोकार, पृ0 120–121
6. सिंह काशीनाथ–रेहन पर रग्घु, राजकमल प्रकाशन– 2010, पृ0 सं0 62–63
7. सिंह काशीनाथ–रेहन पर रग्घू, पृ0 सं0 54
8. सिंह काशीनाथ– रेहन पर रग्घू, पृ0 सं0 78
9. सिंह काशीनाथ–कहानी उपखान, राजकमल प्रकाशन 2003 पृ0 सं0 345
10. सिंह काशीनाथ– कहानी उपखान,पृ0 सं0 346
11. सिंह काशीनाथ– गपोड़ी से गपशप, राजकमल प्रकाशन– 2013 पृ0 सं0 121
12. सिंह काशीनाथ– गोपड़ी से गपशप, पृ0 सं0 121